RESEARCH FRONT

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

आधुनिक युग में संस्कारों की आवश्यकता

डॉ0 राकेश कुमार
* असि0 प्रोफेसर, सन्त गणिनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुहम्मदाबाद गोहना, मऊ।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य की भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए संस्कारों का विधान किया गया है। ये संस्कार वस्तुतः मानवों के मलापनयन, अतिशय गुणाधान और परिपूर्णता हेतु की जाने वाली एक सम्यक् भूषणभूति क्रिया है। सम् उपसर्गपूर्व कृ धातु से करण या भाव में घञ् प्रत्यय करके संस्कार शब्द निष्पन्न होता है। इसका विग्रह है–'संस्क्रियतेऽनेन' अथवा 'संस्करणं संस्कारः' जिसका शाब्दिक अर्थ है– परिष्करण, परिमार्जन, शुद्धता एवं पवित्रता। इस प्रकार हिन्दू व्यवस्था में संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को परिष्कृत अथवा पवित्र बनाने के उद्देश्यों से किया गया, ताकि वह वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त बन सके। शबर का विचार है कि 'संस्कारों नाम स भवति यस्मिञ्जाते पदार्थो भवति योग्यः कश्चिदर्थस्य[पप]', अर्थात् संस्कार वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसी उद्देश्य के योग्य बनती है।

ऐसी मान्यता है कि मनुष्य जन्मना असंस्कृत होता है, किन्तु संस्कारों के माध्यम से वह सुसंस्कृत हो जाता है। संस्कारों से ही उसमें अन्तर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास हो पाता है तथा वह लक्ष्य की प्राप्ति भी कर लेता है। संस्कार व्यक्ति के जीवन में आने वाली बाधाओं के निवारण के साथ–साथ उसकी प्रगति के मार्ग को निष्कपट बनाते हैं। मनु के अनुसार संस्कार शरीर को विशुद्ध करके उसे आत्मा का उपयुक्त स्थल बनाते हैं। इस प्रकार किसी के व्यक्तित्व के सर्वांगींण उन्नति के लिए भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विधान प्रस्तुत किया गया है।[पप]

संसार में जड़–चेतन सभी पदार्थों के लिए संस्कार अपेक्षित है। पशु तो प्राकृत पदार्थों का जिस रूप में है उसी रूप में उपभोग कर लेते हैं, परन्तु मनुष्य तो प्रकृति से उत्पन्न पदार्थों का भी संस्कार करके उपभोग करता है। यथा गेहूँ, यव, धानादि अन्नों को कूट छानकर, पीसकर अग्नि में पकाकर घी, तेल आदि से तल कर भक्षण करता है। उसी प्रकार कंगन बनाने के लिए स्वर्ण को पहले अग्नि में तपाकर मलापनयन संस्कार करता है, पुनः उसे गढ़कर कंगन का रूप देता है, यह अतिशयधान करता है, तत्पश्चात् उसमें रत्न जड़कर हीनांगपूर्ति संस्कार करता है, तब वह चमकता हुआ आभूषण बहुमूल्य बन कर किसी रमणी की कलाई को भूषित करता है। इस प्रकार मानव स्वयं सुसंस्कृत होने के साथ–साथ अपने निवास स्थान, उद्यान, परिधानादि का भी संस्कार करता रहता है।[पपप]

'संस्कार' शब्द का उल्लेख वैदिक तथा ब्राह्मण साहित्य में नहीं मिलता है। मीमांसक इसका प्रयोग यज्ञीय सामाग्रियों को शुद्ध करने के अर्थ में करते हैं। वास्तविक रूप में संस्कारों का विधान हम सूत्र साहित्य में विशेषतया गृह्य सूत्रों में पाते हैं।[4] अलग–अलग शास्त्रों में संस्कारों की संख्या भिन्न–भिन्न मिलती है। गौतम धर्मसूत्र में अड़तालीस, अंगिरास्मृति में पचीस, पारस्कर गृह्यसूत्र में बारह आश्वलायन गृह्य सूत्र में ग्यारह, व्यास स्मृति व मनुस्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है।[5]

व्यास स्मृति में षोडश संस्कारों का वर्णन इस प्रकार है–

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तों जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमणोऽन्नाशनं वपन क्रिया।।
कर्णवेधो व्रतादेशों वेदारम्भ क्रियाविधिः।
केशान्तस्नानमुद्वाहो विवाहाग्नि परिग्रहः।।
त्रेताग्नि संग्रहश्चेति संस्काराः षोडशस्मृताः।।[6]

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

अर्थात् 1–गर्भाधान, 2–पुंसवन, 3–सीमन्तोन्नयन, 4–जातकर्म, 5–नामकरण, 6–निष्क्रमण, 7–अन्नप्राशन, 8–चूड़ाकर्म, 9–कर्णभेद, 10–विद्यारम्भ, 11–उपनयन, 12–वेदारम्भ, 13–केशान्त, 14–समावर्तन, 15–विवाह, 16–अन्त्येष्टि। ये षोडश संस्कार सामाजिक दृष्टि से सर्वमान्य है।

सम्प्रति इन्हीं षोडश संस्कारों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए आधुनिक युग में इनकी आवश्यकता एवं प्रासंगिकता स्वदृष्टि प्रतिपादित करने का प्रयास करेंगे।

1–गर्भाधान संस्कार– यह जीवन का प्रथम संस्कार है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी पत्नी के गर्भ में बीज स्थापित करता है। सूत्रों एवं स्मृति ग्रन्थों में इसके लिए उपयुक्त समय एवं वातावरण का उल्लेख मिलता है। ऋतुकाल के बाद की चौथी से सोलहवीं रात्रियाँ गर्भाधान के निमित्त उपयुक्त बतायी गयी है 'षोडशर्त्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्'।[7]

गर्भाधान के निमित्त रात्रि का समय ही उपयुक्त था। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि 'नार्तवे दिवा मैथुनमर्जयेदल्पभाग्याः अल्पवीर्याश्च दिवाप्रसूयन्तेऽल्पायुषश्चेति'[8] अर्थात दिन में गर्भधारण करने वाली स्त्री से अभागी, दुर्बल एवं अल्पायु सन्ताने उत्पन्न होती हैं।

गर्भाधान प्रत्येक विवाहित पुरुष तथा स्त्री के लिए पवित्र एवं अनिवार्य संस्कार है, जिसका उद्देश्य स्वस्थ, सुन्दर एवं सुशील सन्तान प्राप्त करना है। स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था दी थी कि कोई भी विवाहित पुरुष सन्तानोत्पत्ति के लिए ही सहसवास कर सकता है जिससे एक सामाजिक मर्यादा, गोपनीयता एवं लोक लज्जा बनी रहती थी। पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के स्थान पर हम भारतीयों के लिए सन्तानोत्पत्ति की यह आदर्श विधि आधुनिक युग में अनुकरणीय है।

2– पुंसवन संस्कार–गर्भाधान के तीसरे माह में पुत्र प्राप्ति के लिए यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है। पुंसवन का अर्थ है– 'पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनमीरितम्' अर्थात् वह कर्म जिससे पुत्रोत्पत्ति होती है। पुत्र शब्द का अर्थ है–पुत्=नरकसे, त्र=त्राण करने वाला। इस प्रकार पुत्र–पिता की हर प्रकार से रक्षा करता है। साथ ही तीन ऋणों में पितृ ऋण से उऋण होने के लिए पुत्र जीवन पर्यन्त माता–पिता की सेवा–सुश्रुषा करता है। इसी भाव को लेकर पुत्र की आवश्यकता बतायी गयी है।

जिस अवधारणा के साथ स्मृति ग्रन्थों में पुंसवन संस्कार को सम्मिलित किया गया है, आधुनिकरण युग में उसमें काफी कमी आयी है। वर्तमान समय में परिवारों में माता–पिता की अनदेखी के कारण ही मेट्रोपालिटन शहरों में वृद्धश्रमों का चलन सामने आ रहा है जो जीवन–मूल्यों में आ रही कमी का द्योतक है। अतः हमें उसी अवधारणा के साथ इस संस्कार को सम्पन्न करने की आवश्यकता है, जिस अवधारणा के साथ स्मृतिकारों ने विधान किया है।

3– सीमन्तोन्नयन–गर्भाधान के चौथे से आठवें मास में यह संस्कार होता है। इसमें स्त्री के केशों को ऊपर उठाया जाता है–'सीमन्तउन्नीयते यस्मिन्कर्मणि तत्सीमन्तोन्नयनमिति कर्मनामधेयम्'।[9] ऐसी मान्यता थी कि स्त्री के शरीर को प्रेतात्माएं नाना प्रकार से बाधा पहुँचाती हैं जिसके निवारण के निमित्त यह संस्कार किया जाता है।

इस संस्कार का सकारात्मक पक्ष यह है कि किसी गर्भवती स्त्री के निमित्त किया जाने वाला यह संस्कार उसके हृदय को आहलादन प्रदान करता है। स्त्री की आहलादन से उसका शिशु स्वस्थ रहता है और स्त्री के उत्कृष्ट सोच का वैज्ञानिक प्रभाव यह है कि उसी की सोच के अनुसार ही बच्चे के मस्तिष्क का निर्माण होता है। इसी उत्कृष्ट सोच के कारण ही कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में महान बन सकता है।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

4– जातकर्म–शिशु के जन्म के समय यह संस्कार किया जाता है, जैसा कि मनु ने भी कहा है जातकर्म जातक के जन्म के पश्चात् एवं उसके नाल काटने के पूर्व किया जाता है– प्राङ्नाभिवर्धनात्पुसो जातकर्म विधीयते।''[10] इसमें बालक का पिता सविधि स्नान करके बालक को मधु तथा घृत चटाता है।

इस संस्कार के माध्यम से लोग एकत्र होकर उपहार प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् माता एवं शिशु के दीर्घ और मंगलमय जीवन की सभी के द्वारा कामना की जाती है। जो सभी बाह्य एवं हानिकारक तत्वों से रक्षा करता है। अतः स्वास्थ्य एवं रक्षा हेतु इस संस्कार की आवश्यकता है।

5– नामकरण–बच्चे के जन्म के 10वें अथवा 12वें दिन नामकरण संस्कार किया जाता है–

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारये।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते व नक्षत्रे वा गुणान्विते।।[11]

वृहस्पति के अनुसार नाम ही लोक व्यवहार का साधन है। यह गुण एवं भाग्य का आधार है, इसी से मनुष्य यश प्राप्त करता है–

नामाखिलस्य व्यवहार हेतुः शुभावहं कर्मसुभाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलुनाम कर्म।।[12]

चूंकि नाम ही भाग्य का आधार है, अतः सभी को अपने बच्चों का नाम उत्तम से उत्तम रखना चाहिए।

6– निष्क्रमण–मनुस्मृतिकार के अनुसार बच्चे के जन्म के चौथे मास में निष्क्रमण संस्कार करना चाहिए। अर्थात् पिता के द्वारा बच्चे को घर के बाहर ले जाकर पूर्णिमा के चन्द्रदर्शन और शुभ दिन में सूर्य का दर्शन कराना चाहिए– 'चतुर्थ मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्'।[13] इस संस्कार के पीछे यह उद्देश्य होगा कि बच्चे को कुछ समय के पश्चात् सूर्य की धूप दिखाने से विटामिन 'डी' की प्राप्ति होती है जो बच्चे की अस्थियों को मजबूत करने में सहायक होगी।

7– अन्नप्राशन संस्कार–मनुस्मृति के अनुसार छठे महीने में अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए तथा अपनी कुल परम्परा के अनुसार शिव, विष्णु आदि देवताओं का दर्शन, पूजन आदि शुभ कर्म करते हुए शिशु का विभिन्न कलाओं व शिल्प के प्रतीकों से परिचय कराना चाहिए।

षष्ठे अन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगलं कुले।[14]

इस संस्कार का उद्देश्य यह था कि एक उचित समय पर बच्चा माँ का दूध पीना छोड़कर अन्नादि ग्रहण कर अपना जीवन निर्वाह करने के योग्य बन सके। क्योंकि चिकित्सकीय दृष्टिकोण से शिशु को माँ का दुग्धपान छः माह तक आवश्यक है। इस दृष्टि से यह संस्कार प्रासंगिक है।

8– चूड़ाकर्म–अन्नप्राशन के बाद महत्वपूर्ण संस्कार चूड़करण या चौलकर्म है जिसमें पहली बार बालक के बाल काटे जाते हैं। आश्वलायन का विचार है कि चूड़ाकर्म तीसरे या पाँचवे वर्ष में होना चाहिए किन्तु इसे सातवें वर्ष अथवा उपनयन के समय भी किया जा सकता है–

तृतीय पञ्चमे वाऽब्दे चौलकर्म प्रशस्यते।
प्राग्वासमे सप्तमे वा सहोपनयनेन वा।।[15]

इस संस्कार के पीछे यह उद्देश्य है कि बाल काटने के बाद बालक का शरीर एवं मस्तिष्क के विकसित होने की संभावना अधिक हो जाती है। जो उसके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

9– कर्णभेद संस्कार–इस संस्कार में बालक का कान छेदकर उसमें बाली अथवा कुण्डल पहना दिया जाता है। सुश्रुत ने इसका उद्देश्य रक्षा तथा अलंकरण बताया है– 'रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत्'। विभिन्न शास्त्रकार इसे जन्म के दसवें दिन से लेकर पांचवे वर्ष तक बताते हैं।

कर्णभेद संस्कार का विधान बच्चे को भविष्य में स्वस्थ रखने के उद्देश्य से हुआ। सुश्रुत के अनुसार कर्णभेद अण्डकोश वृद्धि (Hydrocele) तथा अन्त्रवृद्धि (Hernia) के रोगों से मुक्ति दिलाता है। अतः इस संस्कार की भी वर्तमान समय में चिकित्सकीय दृष्टिकोण से आवश्यकता है।

10– विद्यारम्भ–जब बच्चे का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता है तब अक्षरों के बोध के साथ यह संस्कार सम्पन्न कराया जाता है। इसका समय जन्म के पांचवे वर्ष या उपनयन संस्कार के पूर्व बताया गया है। शुभ दिन एवं मुहूर्त में बच्चे का स्नान कराकर सुगन्धित द्रव्यों एवं वस्त्रों से सुसज्जित करके इस संस्कार की क्रिया सम्पन्न होती थी।

आज कल अभिभावक अपने बच्चे को ढाई से तीन साल के मध्य में ही शिक्षा हेतु विद्यालयों में उस समय प्रवेश करा देते हैं जब बालकों की बुद्धि चापल्यता के साथ–साथ सुकुमार भी होती अर्थात् उनका मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य पूरी तरह से विकसित नहीं हुआ होता है। विशेष रूप से इस संस्कार में जो बच्चों को विद्यारम्भ सम्बन्धी 5 वर्ष आयु दी गयी है, वह अत्यधिक उपादेय है।

11– उपनयन–षोडश संस्कारों में उपनयन संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसके माध्यम से बालक सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। उपनयन का शाब्दिक अर्थ है–गुरू के समीप ले जाना।

मनु ने कहा है–

गर्भाटंऽमेब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।।[16]

अर्थात् ब्राह्मण कुमार का उपनयन गर्भाधान या जन्म से लेकर आठवें वर्ष में क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में, और वैश्य का बारहवें वर्ष में करना चाहिए। संस्कार सम्पन्न होने के एक दिन पूर्व रात्रि को बालक मौन का वृत धारण करता था तथा प्रातः काल में वह अपनी माता के साथ एक ही थाली में भोजन करता है, जो माँ के साथ उसका अन्तिम भोजन होता है। इसके बाद बालक का बाल बनवाकर उसे स्नान कराया जाता है तथा वह कौपिन्य वस्त्र धारण करता है। उसके कमर के चारों ओर एक मेखला बाँधी जाती थी। मनु के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णों के विद्यार्थी क्रमशः, ऊन तथा सन की जनेऊ धारण करे–

कर्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।
शण सूत्रमय राज्ञो वैशस्याविक सूत्रजम्।।[17]

ये जनेऊ सत्, रज, तम के प्रतीक माने गये हैं। यह धारक को यह भी याद दिलाती है कि उसे अपने पूर्वज के प्रति तीन ऋणों–ऋषि, देव तथा पितृ से भी उऋण होना है। गुरू विद्यार्थी के कन्धे में यज्ञोपवीत धारण कराते हुए उसके बल, दीर्घ आयु तथा तेज की कामना करता है–

यज्ञोपवीतं परमपवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यंमग्रयं–प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीत बलमस्तु तेजः।।[18]

वस्तुतः उपनयन संस्कार का मुख्य उद्देश्य शैक्षणिक था कि बालक को शिक्षा के लिए समयानुसार गुरु के पास भेज दिया जाय, जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके। इस संस्कार के लुप्तप्राय हो जाने का परिणाम यह हुआ है कि 'सर्वशिक्षा अभियान', 'स्कूल चलो अभियान' के बावजूद भी भारत की साक्षरता दर 2011 के अनुसार 73 प्रतिशत ही है। इस संस्कार की आवश्यकता

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

इसलिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक बालक को समयानुसार गुरू के पास भेज देना चाहिए जो उसके सम्पूर्ण जीवन के विकास एवं प्रगति का आधार है।

12– वेदारम्भ संस्कार–वेदाध्ययन प्रारम्भ करने के पूर्व जो धार्मिक विधि की जाती है, उसे वेदारम्भ संस्कार कहते हैं। इस संस्कार के द्वारा बालक चारों वेदों के अध्ययन के लिए नियम धारण करता है। ऋग्वेद के अध्ययन का आरम्भ करना हो तो पृथ्वी तथा अग्नि को घी की दो आहूतियाँ दी जाती हैं।, यजुर्वेद के अध्ययन में अन्तरिक्ष तथा वायु, सामवेद के अध्ययन मेघ तथा सूर्य, अथर्ववेद के अध्ययन में दिशाओं और चन्द्रमा को आहुतियाँ दी जाती हैं।

वेद अपौरुषेय अखिल ज्ञान राशि हैं। अतः वेदों के अध्ययन हेतु इस संस्कार की आवश्यकता है।

13– केशान्त संस्कार– गुरू के पास रहकर अध्ययन करते हुए विद्यार्थी की सोलह वर्ष की आयु में प्रथम बार दाढ़ी, मूंछ बनवायी जाती है। अतः इसे केशान्त संस्कार कहा जाता है। इस अवसर पर विद्यार्थी द्वारा गुरू को एक गाय दक्षिणा स्वरूप भेंट की जाती है।

किसी भी व्यक्ति को स्वच्छ, स्वस्थ, अलंकृत एवं सुन्दर दिखने के लिए इस संस्कार की महती आवश्यकता है।

14– समावर्तन संस्कार–गुरुकुल में शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् विद्यार्थी जब अपने घर लौटता है तब समावर्तन नामक संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– 'तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनान्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्'। इस अवसर पर स्नान सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था, इसी के बाद विद्यार्थी स्नातक बनता था। राजबली पाण्डेय का विचार है कि समावर्तन संस्कार प्रारम्भ में आधुनिक दीक्षान्त समारोह के समान था। ये उन्हीं विद्यार्थियों का होता था जो ब्रह्मचर्याश्रम नियमों का पालन करते हुए विधिवत अपनी शिक्षा पूरी कर लेते थे। घर लौटते हुए विद्यार्थी को गुरू के द्वारा मानवतावादी, ईमानदारी, पितृ सेवा, समाजसेवादि करने का ज्ञान देते थे। वर्तमान समय में इन्हीं नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु इस समावर्तन संस्कार की आवश्यकता है।

15– विवाह संस्कार–विवाह संस्कार ही एक ऐसा संस्कार है जो समाज में आज भी प्रमुखता से प्रचलित है जिसके माध्यम से कोई विद्यार्थी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। 'विवाह' शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'वह्' धातु से बनता है जिसका शाब्दिक अर्थ है– वधू को वर के घर ले जाना। भारतीय संस्कृति में इसे एक पवित्र धार्मिक संस्था के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। जिसका उद्देश्य पति और पत्नी के सहयोग से विभिन्न पुरुषार्थों को पूरा करना है। पाश्चात्य संस्कृतियों में जहाँ विवाह को एक संविदा मात्र माना गया है, वहीं भारतीय संस्कृति में इसे कभी न समाप्त होने वाली संस्था बताया गया है। याज्ञवल्क्य ने स्पष्टतः लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी हो यदि वह विवाहित नहीं है तो कर्म के योग्य नहीं है–

अपत्नीको नरो भूप कर्मयोग्यो न जायते।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृपः।।[19]

स्मृतिग्रन्थों में विवाह के आठ प्रकार का उल्लेख मिलता है–

ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्रजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचस्त्वष्मोऽधमः।।[20]

ब्रह्म, दैव, अर्ष, प्रजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच हैं। इनमें प्रथम चार को प्रशस्त तथा अन्तिम चार को अप्रशस्त माना गया है।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

वर्तमान समय में समाज में अनाचार, दुराचार, व्यभिचार की घटनाएं बढ़ गयी हैं। यदि यह विवाह संस्कार किसी का भी नियमित समय पर सम्पन्न हो जाता है तो इन समस्याओं से काफी हद तक छुटकारा पाया जा सकता है। आधुनिक समय में प्रचलित 'लिव इन रिलेशनशिप' जैसी शब्दावली से भी समाज मुक्त हो सकता है।

16– अन्त्येष्टि संस्कार–मानव जीवन का अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि है। जो मृत्यु के समय सम्पादित किया जाता है। इसका उद्देश्य मृतात्मा को स्वर्गलोक में सुख एवं शान्ति प्रदान करना है। यह संस्कार वर्तमान समय में भी अपने शास्त्रीय स्वरूप में प्रचलित है। इस संस्कार के समय उपस्थित कोई भी व्यक्ति दार्शनिक एवं अध्यात्मिक दृष्टिकोण से चिन्तन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अपने जीवन को कुशलता एवं ईमानदारी पूर्वक सम्पन्न करना चाहिए, यही इस संस्कार की उपादेयता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में नैतिक एवं जीवनमूल्यों में आ रही कमी, संयुक्त परिवार में बिखराव, माता–पिता के सम्मान में ह्रास एवं समाज में आ रही चारित्रिक एवं शैक्षणिक अवनति संस्कारों के लुप्तप्राय हो जाने का परिणाम है। अतः उपर्युक्त समस्याओं के निवारण एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु इन षोडश संस्कारों के सम्पन्न किये जाने की महती आवश्यकता है। फलतः इन संस्कारों के माध्यम से भारत आधुनिक युग में पुनः सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[i] जैमिनि सूत्र टीका, 1.3
[ii] प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, के0सी0 श्रीवास्तव, युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद 2007, पृ0–167
[iii] भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता, उ0प्र0 संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2002, पृ0–43
4 प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, के0सी0 श्रीवास्तव, युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2007, पृ0–167
5 भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता, उ0प्र0 संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2002, पृ0–44
6 व्यास स्मृति, 1/13–15
7 याज्ञवल्क्य स्मृति
8 प्रश्नोपनिषद्
9 वीरमित्रोदय, संस्कार प्रकाश
10 मनुस्मृति, 2.29 अ
11 मनुस्मृति, 2.30
12 बृहस्पति
13 मनुस्मृति, 2.34 अ
14 मनुस्मृति, 2.34
15 आश्वलायन,
16 मनुस्मृति, 2.36
17 मनुस्मृति, 2.44
18 पारस्कर गृह्यसूत्र
19 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.51
20 मनुस्मृति, 3.21